विरजा महात्म्य व आचार्य शंकर

श्रीश्री माँ सर्वाणी

'शंकर' शब्द का अर्थ है–जो परम मंगलकर। 'शं' अर्थ से शक्ति समन्वित ओंकार, 'कर' अर्थ से उस ओंकाररूपी आदित्य का तेज या किरण है; ओंकाररूपी आदित्य की किरण इस समग्र ब्रह्मांड में मंगलकर है इसीलिए ओंकारेश्वर शिव 'शंकर' नाम से अभिहित होते हैं। आदि शंकराचार्य रूद्र के अवतार थे, इसीलिए उनका नाम हुआ 'शंकर'। सत्वगुणमय वैराग्य का चिन्मय तेज धारण करते हुए उन्होंने जन्मग्रहण किया था। अत्यल्प वयस में ही वैराग्याग्नि उनके मध्य इतनी प्रबल हो गयी थी कि उन्होंने गुरु दीक्षा के पूर्व ही वैदिक शास्त्रावलम्बन द्वारा विरजा होमादि रूपी कर्म के माध्यम से स्वयं ही निज को सन्यास धर्म में आरूढ़ किया था।

सन्यास मार्ग में विरजा होम का माहात्म्य अपार है। योगीहृदय में वैराग्यभाव अथवा विरागभाव आत्मसाधना के पथ पर निवृत्ति के पथ को पुष्ट करता है। इस वैराग्य भाव का उत्स स्थल है कहाँ ? – गोलोक में श्रीराधिका के दिव्य महाभाव की धारा में संयत-निवृत्ति की अवस्था से 'वैराग्य' महाभाव का उदय होता है। उसी महाभाव का ही स्वरूप है 'देवी विरजा' स्वयं; इस कारण से देवी विरजा के प्रति श्रीकृष्ण आकृष्ट हुए थे। इससे श्रीराधिका का उनके ऊपर रुष्ट होने से वे श्रीराधिका के भय से नदीरूप में परिणत हई एवं गोलोक-बैकुंठादि लोकोंमें प्रवाहित होकर इस ब्रह्मांड के मध्य भी अवतरण किया हैं। इसी से सप्तसागर का जन्म हुआ। विरजा श्रीराधिका की सखी थीं एवं श्रीकृष्ण की अतिप्रिया थीं। ये सब हुए भगवत्लीला माधुर्य के रूपतत्त्व। भगवत्लीला के मध्य ही अनंत सृष्टितत्त्व का बीज समाहित रहता है। महाज्ञान-सम्बोधि में परमशिव नित्यस्तर से यह बोधगम्य करते हुए ब्रह्मांड की सृष्टितत्त्व के मध्य इच्छा-माहात्म्य द्वारा आरोप करते हैं। विश्व प्रकृति के छन्द में 'विरजादेवी' नदीरूप में प्रकटित हैं; फिर, आध्यात्म-चेतना में योगतत्त्व के मध्य देहाभ्यंतर में वे नाड़ीरूप में भी प्रवाहित हैं। विरजा देवी की कृपा अंतर में जागृत होने से योगीहृदय में शुद्ध वैराग्य भाव का स्फुरण होता है। जिसके फलस्वरूप विरजा नाड़ी के पथ में योगी की चेतना विशुद्धचक्र के ऊर्ध्व ललनाचक्र से प्राण के प्रवाह में, उजान धारा में ऊर्ध्व की ओर गमन करती है; क्रमशः वह धारा ऊर्ध्व स्रोत में प्रवाहित होकर सहस्रार-पद्म की चेतना को अतिक्रम करते हुए अतिमानस से महामानस स्तर पर उपनीत होकर महाप्राणमय सत्ता मध्य योगी के अस्तित्व बोध को उपनीत कर देती है। प्रकृत सन्यास अवस्था निवृत्तिमार्ग में परमसत्य को अवलोकन करने के लिए अपरिहार्य है। सत्ता के प्रवृत्ति की धारा की अन्तर्मुखी धारा में निवृत्तिपूर्वक चित्तवृत्ति निरोध न होने पर्यन्त योगी योगयुक्त होकर सुषुम्ना में ब्रह्मनाड़ी के मध्य ब्रह्ममार्ग में सत्न्यास की साधना को धारण करने में सक्षम नहीं होते हैं। इस ब्रह्मनाड़ी में ही विरजा का पथ रहा है। विरजा पथ में ही योगीसत्ता शिवावस्था प्राप्त होने में सक्षम होती है। इस कारण योगी जीवन के वैराग्य भावधारा को परिपुष्ट करने के लिए विरजा होम के माध्यम से विरजा देवी की श्रीपादपद्म पर कृपा भिक्षा करते हुए आत्मसाधन संकल्प में व्रती होने की नीति को ही 'सन्यास-दीक्षा' कहकर शास्त्र में अभिहित किया गया है। शिवावतार आदि शंकर इस विरजा देवी के कृपा सिद्ध थे। त्याग की प्रतिमूर्ति धारण कर उन्होंने महाज्ञान की खोज में सत्गुरुकरण करने के लिए अतिदुर्गम पथ अतिक्रम करते हुए शिवक्षेत्र ओंकारेश्वर में आकर उपस्थित हुए थे। यहाँ पर महाज्ञानमय सूर्य महागुरु श्रीगोविन्दपाद रूपी पतंजलिदेव ने शंकर को सत्यदीक्षा रूपी गुप्त योगविद्या का कौशल विशुद्ध पराविद्या वेदान्त-विद्या प्रदान किया। दीक्षा की शक्ति से शंकर के मध्य उनके सत्ता के आदि संस्कार जागृत हो उठे एवं इसके फलस्वरूप अल्प समय में ही उन्होंने पूर्ण सिद्धिलाभ किया। अवतारकल्प शिव स्वरूप आचार्य शंकर की जीवनधारा समग्र विश्व के व्यास-महामंडल द्वारा परिचालित व परिवृत थी। वे थे शिवावस्था की अनुभूति 'अहं ब्रह्मास्मि' बोध का सन्यास धर्म के व्रतधारी, वैदिक मत के संस्थापक। किन्तु

आचार्य शंकर

परवर्तीकाल में उनके अद्वैत महाज्ञान की अनुभूति में शिव व शक्तितत्त्व के अभेदत्व अद्वैतभाव का प्रकाश पाया जाता है (यथा– अर्ध-नारीश्वर स्तोत्रम्)। शंकर के जीवन में आद्याशक्ति महामाया की बहु लीला प्रकट हुई है। तन्मध्य उल्लेखित प्रसिद्ध एक घटना इस स्थल में उद्धृत कर रही हूँ। – काशीधाम में एकदिन आचार्य शंकर स्नानार्थ मणिकर्णिका को जा रहे थे, पथ मध्य उन्होंने देखा – एक युवती रमणी अपने मृत पति का मस्तक क्रोड़ में लेकर आकुल क्रंदन कर रही हैं। मृत देह मणिकर्णिका के संकीर्ण पथ को रुद्ध कर पड़ा हुआ था। रमणी निकट में जिसको ही देख रही थी उससे ही निज पति के सत्कार के लिए सहायता भिक्षा माँग रही थी एवं क्रंदन कर रही थी। आचार्य शंकर कुछ समय अपेक्षा करते हुए अंत में रमणी से कहा – ''माँ! शव को यदि एक पार्श्ववर्ती करें तो हमसब जा सकते है।'' रमणी इतनी शोकाभिभूत थी कि जैसे यह बात उसके कर्णकुहर में प्रविष्ट ही नहीं हुई। तब आचार्य शंकर ने कोई उपाय न देखकर बारंबार उसको शव हटाने का अनुरोध करने लगे। तब उस रमणी ने कहा –''क्यों महात्मन्! शव को ही कहिए ना?'' रमणी के ऐसे वचन सुनकर आचार्य शंकर ने विस्मित होकर करुणार्द्र हृदय से उससे कहा –''माँ! क्या आप बुद्धिभ्रष्ट हुई है? शव क्या कभी हट सकता है? उसमें क्या शक्ति है जो वह स्वयं हट सकेगा?'' रमणी ने तब कहा,''क्यों महात्मन्! आपके मतानुसार तो शक्ति-शुन्य ब्रह्म का ही जगत् कतृत्व है। यह होने से तब शव हटेगा क्यों नहीं?'' रमणी की यह वात सुनकर आचार्य शंकर स्तम्भित हो गये। तब वे सोचने लगे – क्या यह दैवलीला हैं! दूसरी तरफ निमेष मध्य शव सह रमणी अन्तर्धान हो गई। तदुपरांत उन्होंने अन्तर में उपलब्धि किया कि यह भगवती की ही कृपा है; शक्तिशुन्य निर्विशेष ब्रह्मतत्त्व उपदेश साधारण मनुष्य के ग्रहणीय नहीं हो पाता। ''ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, जीव ब्रह्म भिन्न दूसरा और कुछ नहीं, निर्विशेष ब्रह्म में शक्ति का भी स्थान नहीं होता, यह ही परमार्थ सत्य है'' – यह तत्त्व कितने जन ग्रहण कर सकते है? कर्म एवं आत्म-साधना द्वारा चित्त शुद्ध न होने पर्यन्त अद्वैत ब्रह्मतत्त्व ज्ञानगम्य नहीं हो पाता। इसी लिए जग-जननी काशीपूराधीश्वरी अन्नपूर्णा देवी ने एक अद्भुत भगवत्लीला के माध्यम से आचार्य शंकर को सत्य की शिक्षा प्रदान की थी।

(सहायक ग्रंथ : आचार्य शंकर के जीवन-चरित)

हिन्दी अनुवाद – मातृचरणाश्रित श्रीविमलानन्द

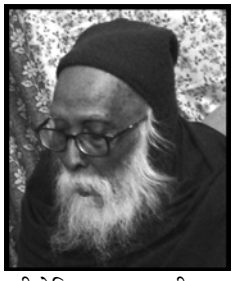

श्रीगोविन्ददास उदासीबाबा

झुठी काया, झुठी माया तोय तरंग समान,
पल भरका विश्वास नाहि, निकल जायगा प्राण।
सद्गुरु समीप सिर झुकाये चढ़ाले चरण का रज,
निन्दन वन्दन छोड़ कर, यशोदा नन्दन भज।
योग, याग, तप् होय ना होए सुमिरो हरिनाम
कहेन दास के मेरा गुरुजी, झट-पट करले काम।।

–संत कबीरदासजी

जल की तरंग जैसे जल से उत्पन्न होकर पुनः जल में ही मिल जाती है। जल के बिना उसकी कोई सत्ता ही नहीं है – उसी तरह इस संसार में भी काया-माया ये सारी मिथ्या हैं। इस मायावी शरीर के अस्तित्व का क्षणमात्र भी विश्वास नहीं है। प्राण-वायु इस क्षण प्रवाहित हो रही है दूसरे ही क्षण चिरकाल के लिए अवरुद्ध हो जाएगी। तुम सद्गुरु के समक्ष नत-मस्तक होकर उनकी चरण-रज एवं उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर लो। असत् वचन परनिन्दा एवं प्रतारणा का परित्याग करो। प्रीति, भक्ति और प्रेम सहित गुरुनाम या हरि-हरि करते जाओ। योग, जप-तप यथासंभव करो, यथाशीघ्र अपने मूल कार्य (हरि सुमिरन) को पूरा कर लो।

–श्रीगोविन्ददास उदासीबाबा